अमेरिका-तालिबान समझौता और भारत

drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/news-editorials/02-03-2020/print

इस Editorial में The Hindu, The Indian Express, Business Line आदि में प्रकाशित लेखों का विश्लेषण किया गया है। इस लेख में अमेरिका-तालिबान समझौता और भारत पर पड़ने वाले इसके प्रभाव पर चर्चा की गई है। आवश्यकतानुसार, यथास्थान टीम दृष्टि के इनपुट भी शामिल किये गए हैं।

संदर्भ

दो दशक से युद्ध और हिंसा से जूझ रहे अफगानिस्तान में शांति की उम्मीद जगी है। शांति समझौते से लोग खुश हैं और उन्हें देश में अमन लौटने की आशा है। हालाँकि लोगों में संदेह भी है कि देश में यह शांति लंबे समय तक कायम रहेगी भी या नहीं। वर्ष 2001 में 9/11 हमले के बाद अमेरिका ने तालिबान के विरुद्ध युद्ध में अपने सैनिक अफगानिस्तान भेजे थे। कई वर्षों तक चली इस लंबी लड़ाई में अब तक 3500 अमेरिकी सैनिकों की मौत हो चुकी है और अब अमेरिका अफगानिस्तान से अपने सैनिकों को वापस बुलाना चाहता है। इस वर्ष के प्रारंभ में शांति समझौते को लेकर सहमति बनने के बाद हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने शांति समझौते को अंतिम रूप देने की अनुमति दे दी है।

इससे पूर्व बराक ओबामा के कार्यकाल में भी शांति स्थापना और सैनिक वापसी के तमाम प्रयास किये गए थे। यहाँ तक कि ओबामा ने तालिबान के प्रति अपनी नीतियों में भी बदलाव किया था, परंतु उस समय किये गए प्रयास सफल नहीं हो पाए थे। इस आलेख में तालिबान के जन्म, सोवियत संघ और अमेरिका की सेनाओं के साथ संघर्ष, अफगानिस्तान पर नियंत्रण और भारत की सुरक्षा चिंता के मुद्दे को समझने का प्रयास किया जाएगा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- पाकिस्तानी गुप्तचर एजेंसी इंटर सर्विसेज़ इंटेलिजेंस (Inter Services Intelligence-ISI) ने मदरसों के अफगान छात्रों को भड़का कर वर्ष 1990 के दशक में सोवियत सेनाओं के विरुद्ध तालिबान को जन्म दिया। इसे सऊदी अरब समेत कई खाड़ी देशों से पैसा मिलता था।
- तालिबान एक इस्लामिक कट्टपंथी राजनीतिक आंदोलन है। अफगानिस्तान को पाषाणयुग में पहुँचाने के लिये तालिबान को जिम्मेदार माना जाता है।
- वर्ष 1994 के आसपास जब तालिबान पहली बार अफगानिस्तान के पटल पर उभरा तो उसने पाकिस्तान की सीमा से लगे पश्तूनों के इलाके में शांति-सुरक्षा बहाल करने का वादा किया। उसने सत्ता में आने पर शरिया कानून लागू करने की भी बात कही तथा भ्रष्टाचार पर भी नकेल कसने का वादा किया।

- सितंबर 1995 में दक्षिणी-पश्चिमी अफगानिस्तान से आगे बढ़ते हुए तालिबान ने ईरान की सीमा से लगे हेरात पर कब्ज़ा कर लिया। एक साल बाद लड़ाकों ने तत्कालीन राष्ट्रपति बुरहानुद्दीन रब्बानी को बेदखल कर काबुल पर कब्जा कर लिया। वर्ष 1998 तक अफगानिस्तान के 90 फीसदी हिस्से पर तालिबान का नियंत्रण स्थापित हो गया था।
- तालिबान ने कट्टरवादी इस्लामिक कानूनों को लागू किया। शुरुआत में अधिकांश तालिबानी लड़ाके पाकिस्तान के मदरसों में पढ़ने के बाद इसका हिस्सा बने। सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात के अलावा पाकिस्तान इन तीन देशों में शामिल था जिसने तालिबान शासन को मान्यता दी थी।

अमेरिका का प्रवेश

- वर्ष 2001 में न्यूयॉर्क में आतंकी हमले के बाद तालिबान दुनिया की नज़रों में आया। इसी दौरान 7 अक्तूबर 2001 को अमेरिका ने अफगानिस्तान पर हमला कर दिया। अमेरिकी सेना ने तालिबान को सत्ता से बेदखल कर दिया।
- हालाँकि, इस हमले के बावजूद तालिबान नेता मुल्ला उमर और अलकायदा प्रमुख ओसामा बिन लादेन को पकड़ा नहीं जा सका।
- दिसंबर 2001 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सहयोग से हामिद करज़ई को अफगानिस्तान का अंतरिम प्रशासनिक प्रमुख बनाया गया।
- वर्ष 2004 में अफगानिस्तान का संविधान अस्तित्व में आया। संविधान के प्रावधानों के अधीन रहते हुए अफगानिस्तान ने अक्तूबर 2004 में लोकतांत्रिक प्रक्रिया का पालन करते हुए अपने पहले राष्ट्रपति का निर्वाचन किया।
- वर्ष 2005-2006 के दौरान तालिबान और अलकायदा द्वारा संयुक्त रूप से किये गए आतंकी हमलों से अफगानिस्तान में शांति बहाली की प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न हो गया।
- वर्ष 2009 में बराक ओबामा के राष्ट्रपति बनने के बाद अफगानिस्तान में शांति बहाली की प्रक्रिया को पुनः प्रारंभ करने के लिये अधिक संख्या में अमेरिकी सैनिकों की तैनाती की गई।
- मई 2011 में पाकिस्तान के एबटाबाद में 9/11 हमलों के मास्टरमाइंड ओसामा-बिन-लादेन को अमेरिकी सेनाओं द्वारा मार गिराया गया।
- जून 2011 में राष्ट्रपति ओबामा ने अफगानिस्तान से अमेरिकी सैनिकों की सीमित संख्या में वापसी का रोडमैप प्रस्तुत किया।
- जून 2013 में अफगानिस्तान सेना ने पूरी तरीके से सुरक्षा का उत्तरदायित्व ले लिया, अब अमेरिकी सेना केवल सहयोगी के रूप में कार्य कर रही थी।
- जनवरी 2017 में डोनाल्ड ट्रंप के अमेरिकी राष्ट्रपति बनने के बाद अफगान नीति के संदर्भ में प्रमुख फोकस अफगानिस्तान से अमेरिकी सेना की वापसी पर रहा, जिसे अब मूर्त रूप दिया जा रहा है।

समझौते के मुख्य बिंदु

- कतर के दोहा में अमेरिका के शांति प्रतिनिधि जलमय खालिज़ाद और तालिबान के प्रतिनिधि मुल्ला अब्दुल गनी बारादर के बीच शांति समझौते पर मुहर लग गई।
- इस समझौते के तहत अमेरिका अगले 14 महीने में अफगानिस्तान से अपने सभी सैन्य बलों को वापस बुलाएगा। इस समझौते के दौरान भारत समेत दुनियाभर के 30 देशों के प्रतिनिधि मौजूद रहे।
- समझौते के अनुसार, अफगानिस्तान में मौजूद अपने सैनिकों की संख्या में अमेरिका धीरे-धीरे कमी लाएगा। इसके तहत अग्रिम छह माह में करीब 8,600 सैनिकों को वापस अमेरिका भेजा जाएगा।
- अमेरिका अपनी ओर से अफगानिस्तान के सैन्य बलों को सैन्य साजो-सामान देने के साथ प्रशिक्षित भी करेगा, ताकि वह भविष्य में आंतरिक और बाहरी हमलों से खुद के बचाव में पूरी तरह से सक्षम हो सकें।
- तालिबान ने इस समझौते के तहत बदले में अमेरिका को भरोसा दिलाया है कि वह अलकायदा और दूसरे विदेशी आतंकवादी समूहों से अपने संबंध समाप्त कर देगा।

- तालिबान अफगानिस्तान की धरती को आतंकवादी गतिविधियों के लिये इस्तेमाल नहीं होने देने में अमेरिका की मदद करेगा।
- अमेरिका के रक्षा मंत्री मार्क एस्पर ने कहा कि अगर तालिबान सुरक्षा गांरटी से इनकार करता है और अफगानिस्तान की सरकार के साथ वार्ता की प्रतिबद्धता से पीछे हटता है तो अमेरिका उसके साथ ऐतिहासिक समझौते को खत्म कर देगा।

अमेरिका में बड़ा चुनावी मुद्दा

- वियतनाम के बाद अमेरिकी सैन्य इतिहास में यह दूसरा सबसे लंबा सशस्त्र संघर्ष रहा, जिसे अमेरिका द्वारा पूर्णता निरर्थक समझा जा रहा है।
- अमेरिका में वर्ष 2020 में होने वाले राष्ट्रपति चुनाव में यह बड़ा मुद्दा है। राष्ट्रपति ट्रंप ने पिछले चुनाव प्रचार में दो दशकों से अफगानिस्तान में तैनात अमेरिकी फौज की वापसी को बड़े मुद्दे के रूप में प्रचारित किया था।
- पहली बार राष्ट्रपति बनने के बाद ट्रंप अमेरिकी सैनिकों की वापसी का वादा अभी तक पूरा नहीं कर पाए थे। अब नए समझौते के बाद अमेरिकी सैनिकों की वापसी के मुद्दे से ट्रंप को राष्ट्रपति पद के चुनाव में फायदा हो सकता है।

तालिबान के रुख में बदलाव क्यों है?

- तालिबान अफगानिस्तान में इस्लामिक स्टेट जैसे आतंकवादी संगठन के उभार से जूझ रहा है।
- इस्लामिक स्टेट तालिबान और अमेरिका समर्थित अफगान सरकार दोनों के साथ सीधे संघर्ष में है।
- तालिबान अफगान लोगों को यह दिखाने के लिये उत्सुक है कि वह गंभीरता से उन पर शासन करना चाहता है।

पाकिस्तान के लिये स्वर्णिम मौका

- तालिबान के साथ अमेरिका की शांति वार्ता और समझौता पाकिस्तान के लिये लाभ का सौदा है। इसलिये इन दोनों ध्रुवों के बीच पाकिस्तानी सरकार और उसकी खुफिया एजेंसी ISI बिचौलिये का कार्य कर रही थी।
- अफगानिस्तान से अमेरिकी फौजों के वापस जाते ही पाकिस्तान तालिबान की मदद से कश्मीर में आतंकी घटनाओं को अंजाम दे सकता है।
- तालिबान को अमेरिका के साथ बातचीत की राह पर पाकिस्तान ही लेकर आया, क्योंकि वह अपने पड़ोस से अमेरिकी सैन्य बलों की जल्द वापसी चाहता है। कतर की राजधानी दोहा में अमेरिका-तालिबान की वार्ता में शामिल होने के लिये ही पाकिस्तान ने कुछ महीने पहले तालिबान के उप संस्थापक मुल्ला बारादर को जेल से रिहा किया था।
- यदि अफगानिस्तान में तालिबान की जड़ें मज़बूत होती हैं तो वहाँ की सरकार को हटाने के लिये पाकिस्तान तालिबान को सैन्य साजो-सामान मुहैया करा सकता है क्योंकि अफगानिस्तान की वर्तमान सरकार के साथ पाकिस्तान के संबंध अच्छे नहीं है।

भारत की चिंताएँ

- भू राजनैतिक रूप से अहम अफगानिस्तान में तालिबान के प्रसार से वहाँ की नवनिर्वाचित सरकार को खतरा होगा और भारत की कई विकास परियोजनाएँ प्रभावित होंगी।
- इसके अतिरिक्त पश्चिम एशिया में अपनी पैठ बनाने में लगी भारत सरकार को बड़ा नुकसान होगा।
- इसके साथ ही भारत पहले से ही अफगानिस्तान में अरबों डॉलर की लागत से कई बड़ी परियोजनाएँ पूरी कर चुका है और इनमें से कुछ पर अभी भी काम चल रहा है।

- भारत 116 सामुदायिक विकास परियोजनाओं पर काम कर रहा है, जिन्हें अफगानिस्तान के 31 प्रांतों में क्रियान्वित किया जाएगा। इनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, पेयजल, नवीकरणीय ऊर्जा, खेल अवसंरचना और प्रशासनिक अवसंरचना के क्षेत्र शामिल हैं।
- भारत ने अब तक अफगानिस्तान को करीब तीन अरब डॉलर की मदद दी है, जिससे वहां संसद भवन, सड़कों और बाँध आदि का निर्माण हुआ है। अतः इन सभी परियोजनाओं पर गंभीर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।
- ईरान के चाबहार पोर्ट के विकास में भारत ने भारी निवेश किया हुआ है, ताकि अफगानिस्तान, मध्य एशिया, रूस और यूरोप के देशों के साथ व्यापार और संबंधों को मज़बूती दी जा सके। ऐसे में यदि तालिबान सत्तासीन होता है तो भारत की यह परियोजना भी खतरे में पड़ सकती है क्योंकि इससे अफगानिस्तान के रास्ते अन्य देशों में भारत की पहुँच बाधित होगी।
- भारत की चिंता यह भी है कि अगर अमेरिका अपनी सेना को अफगानिस्तान से हटा लेता है पाकिस्तान अपने यहाँ उत्पन्न हो रहे आतंकवाद के लिये तालिबान और अफगानिस्तान को ज़िम्मेदार ठहरा सकता है।

अफगान सरकार को भी खतरा

- अमेरिका और तालिबान के बीच शांति वार्ता के सफल होने से अफगानिस्तान की मौजूदा सरकार के लिये भी बड़ा खतरा है। अमेरिका द्वारा अपने सैनिकों को वापस बुलाने से तालिबान को फिर से अपनी जड़ें मज़बूत करने से रोकने के लिये कोई बड़ी ताकत मौजूद नहीं होगी।
- अमेरिकी सैन्य बलों के वापस जाते ही तालिबान अफगान सरकार के खिलाफ युद्ध का ऐलान भी कर सकता है, जिससे देश में गृहयुद्ध का खतरा पैदा हो सकता है।
- तालिबान को पाकिस्तान से परोक्ष रूप से मिलने वाला सैन्य समर्थन अफगान सरकार के लिये चिंता का विषय रहा है।
- विदित है कि अफगानिस्तान सरकार अमेरिका-तालिबान के बीच हो रही शांति वार्ता के खिलाफ थी। राष्ट्रपति अशरफ गनी ने कहा भी था कि बेगुनाह लोगों की हत्या करने वाले समूह से शांति समझौता निरर्थक है।

आगे की राह

- तेज़ी से बदलते अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के दौर में भारत के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि अफगानिस्तान जैसे देशों के साथ अपने संबंधों को मज़बूत किया जाए।
- भारत को अपनी सुरक्षा ज़रूरतों की समीक्षा कर भारतीय उपमहाद्वीप की सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए एक निर्णायक भूमिका में आना होगा।
- अमेरिका द्वारा क्षेत्र में शांति की प्रक्रिया को बहाल रखने के लिये अमेरिकी सैन्य बलों को सीमित संख्या में तैनात रखना चाहिये।
- तालिबान के साथ बातचीत करने के लिये संवाद का प्रत्यक्ष तंत्र विकसित करना चाहिये।

प्रश्न: 'अफगानिस्तान से अमेरिकी सैन्य बलों की वापसी शक्ति-शून्यता की स्थिति निर्मित करेगी'। इस कथन के आलोक में भारत के समक्ष आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण कीजिये।